RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-06
June-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

# वैदिक कालीन अध्ययन व्यवस्था की वर्तमान प्रासंगिकताः एक शिक्षा शास्त्रीय मीमांसा

गोपाल गुर्जर

*प्रशिक्षु, एम.एड. क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, एनसीइआरटी, अजमेर*

**ARTICLE DETAILS**

**Article History**
*Published Online:* 10 June 2019

**Keywords**
वैदिक अध्ययन, शिक्षा, प्रासंगिकता, मूल्यांकन.

***Corresponding Author**
*Email:gurjar.rie[at]gmail.com*

**ABSTRACT**

*प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का क्रमिक विकास एक स्वाभाविक ढंग से हुआ था। उसकी जड़े समाज के अंतराल में थी तथा उसका विकास नैसर्गिक था। उसका एक उद्देश्य था और कुछ संदेश था। भारत के जंगलों और काननों के मध्य में स्थित प्रकृति की रमणीक सोभा से घिरे हुए विद्या केंद्र सभ्यता और संस्कृति के अगाध स्त्रोत थे जहाँ से मानवता का विकास हुआ। राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धांत क्षेत्र में भारत ने चाहे अधिक उन्नति नही की हो, क्योंकि उसका उद्देश्य सांसारिक पदार्थ संपन्नता की ओर इतना नहीं रहा, किंतु शिक्षा क्षेत्र में भारतीय देन अद्वितीय है। जब संसार की अन्य जातियां सभ्यता की बोली में केवल बड़बड़ाना ही सीख रही थी, भारत ने उच्च तत्वज्ञान की मीमांसा की। उसने अपनी सभ्यता के एक मानदंड की स्थापना की। भारत के प्राचीन शिक्षकों ने शिक्षा के एक विशिष्ट रूप का विकास किया, जिसके द्वारा लौकिक और पारलौकिक अनुभूतियों के समन्वय की स्थापना हुई और इस प्रकार भारतवर्ष माननीय पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ।*

*प्रस्तुत शोध के शोध उद्देश्यों आध्यात्मिकता, नैतिकता, सामाजिकता तथा शिक्षा के क्षेत्र में वेदों के अध्ययन की उपयोगिता का अध्ययन करने के आलोक में शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से वैदिक कालीन अध्ययन व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में प्रासंगिकता का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है।*

## 1. प्रस्तावना

वर्तमान की जड़ अतीत में होती है। किसी भी देश का अतीत उसकी वर्तमान और भावी प्रेरणा का मूल स्रोत होता है। प्राचीन भारत की यह विशेषता है कि इसका निर्माण राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धार्मिक क्षेत्र में हुआ था। जीवन में प्रायः सभी अंगों में धर्म का प्रधान्य था। भारतीय संस्कृति धर्म की भावनाओं से ओतप्रोत है। हमारे पूर्वजों ने जीवन की जो व्याख्या की तथा अपने कर्तव्यों का जो विश्लेषण किया वह सभी उनके वृहत्तर अध्यात्म ज्ञान की ओर संकेत करता है। उनकी राजनीतिक तथा सामाजिक वास्तविकता केवल भौगोलिक सीमाओं के अंतर्गत ही बंध कर नहीं रह गई, उन्होंने जीवन को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा और 'सर्वभूत हीते रतः' होना ही अपना कर्तव्य समझा। भारत ने केवल भारतीयता का विकास नहीं किया, उसने चिर–मानव को जन्म दिया और मानवता का विकास करना ही उसकी सभ्यता का एकमात्र उद्देश्य हो गया। उसके लिए वसुधा कुटुंब थी।

राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में धर्म का प्रावधान होने से जीवन में एक आलौकिक विचारधारा का समावेश हुआ। प्राचीन हिंदुओं की राजनीति हिंसा, स्वार्थ पर अवलंबित न होकर प्रेम, सदाचार और परमार्थ पर आधारित थी। व्यक्ति का विकास ही समाज का विकास समझा जाता था। आर्थिक क्षेत्र में भी जीवन की कोमल व पवित्रधार्मिक भावनाएं क्रियाओं का निर्देशन करती थी; यहाँ तक की संपूर्ण भारतीय सामाजिक संगठन मानव की मूल भावनाओं तथा जीवन के सिद्धांतों पर आधारित था। जीवन का उद्देश्य था, एक आदर्श था और उसकी प्राप्ति संसार की सभी भौतिक विभूतियों से उच्चतर समझी जाती थी। प्राचीन भारत की शिक्षा का विकास भी इसी आधार पर हुआ।

## 2. शोध के उद्देश्य

1. आध्यात्मिकता के क्षेत्र में वेदों के अध्ययन की उपयोगिता का अध्ययन करना।
2. नैतिकता के क्षेत्र में वेदों के अध्ययन की उपयोगिता का अध्ययन करना।
3. सामाजिक क्षेत्र में वेदों के अध्ययन की उपयोगिता का अध्ययन करना।
4. शिक्षा के क्षेत्र में वेदों के अध्ययन की उपयोगिता का अंतिम करना।

## 3. शोध विधि

शोधार्थी का शोध कार्य वैदिक कालीन अध्ययन व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में प्रासंगिकता से संबंधित है। इसलिए शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत अध्ययन के दौरान 'दार्शनिक तथा विषय वस्तु विश्लेषण विधि' का प्रयोग किया गया है।

## 4. प्रदत्तों का एकत्रीकरण

शोधार्थी द्वारा वैदिक कालीन अध्ययन व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में प्रासंगिकता का विश्लेषण करने के

RRIJM 2015, All Rights Reserved

लिए वैदिक तथा उत्तर वैदिक कालीन प्राथमिक तथा द्वितीयक साक्ष्य सामग्री का अवलोकन किया गया।

## 5. शोध परिसीमन

प्रस्तुत शोध अध्ययन वैदिक कालीन अध्ययन व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में प्रासंगिकता का विश्लेषण करने तक सीमित रहा।

## 6. प्रदत्तों का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों के अनुसार वैदिक कालीन अध्ययन व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में प्रासंगिकता का विश्लेषण व व्याख्या निम्नानुसार हैः–

### 6.1 आध्यात्मिकता के क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

भारत में शिक्षा तथा विज्ञान की खोज केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही नहीं हुई। अपितु वे 'धर्म' के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त करने का एक क्रमिक प्रयास माने गए। मोक्ष ही जीवन का चरम विकास था। यही कारण है, कि जीवन की संपूर्ण बहुमुखी क्रियाएं धर्म के मार्ग पर चलकर ही अपने एकमात्र गंतव्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर हुई। भारत के संपूर्ण साहित्य, विज्ञान और कला का सृजन ही उसका अभीष्ट पर पहुंचने का प्रयास है। प्राचीन भारतीय साहित्य एक प्रकार से धर्म का वाहन है। जैसा कि मैकडोनल ने कहा है कि, "प्राचीनतम और वैदिक काव्य के सृजन–काल से ही हम भारतीय साहित्य पर एक प्रकार से लगभग एक हजार वर्ष तक धार्मिक छाप लगी हुई पाते हैं। यहाँ तक कि वैदिक काल के अंतिम ग्रंथ जिन्हें हम धार्मिक नहीं कह सकते, अपना धर्म प्रचार का उद्देश्य रखते हैं। यह वास्तव में 'वैदिक' शब्द में प्रकट होता है क्योंकि वेद का अर्थ ज्ञान होता है तथा संपूर्ण पवित्र ज्ञान का साहित्य की शाखा के रूप में बोध कराता है।"

प्राचीन भारतीय शिक्षा का विकास भी भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुरूप ही हुआ है। जीवन तथा संसार की क्षणभंगुरता का अनुमान तथा मृत्यु एवं भौतिक सुखों की सारहीनता के भावों ने एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान किया और वस्तुतः संपूर्ण शिक्षा परंपरा इन्हीं सिद्धांतों पर विकसित हुई। यही कारण था कि भारतीय ऋषियों ने एक अदृश्य जगत और आध्यात्मिक सत्ता के संगीत गाये और अपने संपूर्ण जीवन को भी उसी के अनुरूप ढाला। इस भौतिक जगत को भी कभी गंभीरता पूर्वक नहीं ले सके और उनकी सभी प्रवृतियां विकास की ओर न होकर आंतरिक जगत के सर्जन और विकास में लग गई। यद्यपि मृत्यु उनके भय का कारण नहीं थी तथापि मृत्यु तथा संसार के आवागमन से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने एक अमर और स्थाई जीवन की कल्पना की। जगत मिथ्या लगा और जीवन का एक मात्र सत्य प्रतीत हुआ जीवात्मा का परमात्मा में विलीनीकरण। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य ही 'चित्त वृत्ति निरोध' हो गया, क्योंकि इसी के द्वारा उन्होंने इस एकीकरण की कल्पना की थी।

### 6.2 नैतिकता के क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

प्राचीन काल में विद्यार्थी इस जगत के संपूर्ण विप्लव और विद्रोह से परे प्रकृति की रमणीक गोद में अपने गुरु के चरणों में बैठकर जीवन की समस्याओं का श्रवण, मनन और चिंतन करता था। पर्वत की चोटी पर पड़ी हुई प्रथम हिम कणिकाओं की भांति उसका जीवन पवित्र था। जीवन उसके लिए प्रयोगशाला था।वह केवल पुस्तकीय शब्द ज्ञान ही प्राप्त नहीं करता था, अपितु बहुधा जनसमूह के संपर्क में आकर भी जगत व समाज का व्यवहारिक ज्ञान उपलब्ध करता था।

विद्यार्थी का गुरु गृह पर रहना तथा उसकी सेवा करना अनूठी भारतीय परंपरा है। इस प्रकार गुरु के निकटतम संपर्क में आने से विद्यार्थी के अंदर स्वभाविक रूप से गुरु के ही गुणों का समावेश हो जाता था। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए यह अनिवार्य था, क्योंकि गुरु ही उन आदर्शों, परंपराओं तथा सामाजिक नीतियों का प्रतीक था जिसके मध्य में रहकर विद्यार्थी का पालन पोषण होता था। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी का गुरु के पास निकटतम संपर्क संपूर्ण सामाजिक परंपराओं से विद्यार्थियों का साक्षात्कार करा देता था।

### 6.3 सामाजिक क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

इसके अतिरिक्त भारतीय शिक्षा प्रणाली की विशेषता यह थी कि शिक्षा जीवनोपयोगी थी। गुरु गृह में रहते हुए विद्यार्थी समाज के संपर्क में आता था। गुरु के लिए इंधन व पानी लाना तथा अन्य गृह कार्य को करना उसका कर्तव्य समझा जाता था। इस प्रकार वह न केवल गृहस्थ होने का शिक्षण पाता था अपितु, धर्म का गौरव पाठ तथा सेवा का पदार्थ पाठ भी पढता था। गुरु की गायों को चराने तथा अन्य प्रकार से गुरु की सेवा करने से एक आध्यात्मिक लाभ भी विद्यार्थियों को होता था। विनय तथा अनुशासन की समस्या जिसने वर्तमान शिक्षा क्षेत्र को चुनौती सी दे रखी है। स्वतः ही समाप्त हो जाती थी और साथ ही साथ विद्यार्थी कुछ जीवन उपयोगी उद्यम, जैसे पशुपालन, कृषि तथा डेयरी फार्म इत्यादि में शिक्षण भी पा लेता था। छांदोग्य उपनिषद में महासंत सत्यकाम की कथा आती है। जो विद्यार्थी जीवन में गुरु की गायों का पालन करते थे और जिनके निरीक्षण में गायों की संख्या चार सौ से एक हजार तक हो गई थी. इसी प्रकार वृहदारण्यक में भी हमें ऋषि याज्ञवल्क्य की गाथा मिलती है. जिन्हें राजा जनक ने एक हजार गायों का दान दिया जो उनके महान ज्ञान का पारितोषिक था। इससे प्रमाणित होता है कि शिक्षा केवल सिद्धांत की नहीं थी, अपितु जीवन की वास्तविकताओं से इसका संबंध था। ऋग्वेद में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि एक ऋषि स्वयं कवि थे, उनके पिता

RRIJM 2015, All Rights Reserved 

भिषग अर्थात चिकित्सक तथा उनकी माँ उपलप्रिक्षिणी अर्थात आटा पीसने वाली थी। इस प्रकार उच्चतम शिक्षा में भी श्रम का महत्व था। जीवन की गुढतम समस्याओं को भारतीय ऋषियों ने जीवन के साधारण कार्य क्षेत्रों में सुलझा दिया था। इस पद्धति को वर्तमान काल में 'क्रिया से ज्ञान प्राप्त करना' कहते हैं, और आधुनिक युग में अमेरिका जिसका प्रवर्तक समझा जाता है, भारतीय ऋषियों तथा विद्यार्थियों का एक प्रमुख शिक्षण सूत्र था। जीवन की प्रयोगशाला शिक्षा परीक्षणों के लिए थी जिस में सफलता प्राप्त कर के प्राचीन शिक्षा शास्त्रियों ने एक परंपरा का निर्माण किया।

इसी प्रकार विद्यार्थियों का जीवन निर्वाह तथा गुरु सेवा से निमित भिक्षान्न प्राप्त करना भी प्रधानतः एक भारतीय परंपरा ही थी। इसका उद्देश्य विद्यार्थी को प्रमुखापेक्षी बनाना नहीं था और यह समाज हित के प्रतिकूल नहीं समझा जाता था। वास्तव में भिक्षा प्रथा प्राचीन काल में सम्मानीय कार्य समझा जाता था। शतपथ ब्राह्मण में इसके शिक्षा महत्व को स्वीकार किया गया है। यह प्रथा विद्यार्थी में त्याग तथा मानवीय गुणों का विकास करती थी।

उसके अहंकार का विनाश करके उसे व्यावहारिकजगत के सम्मुख ला खड़ा करती थी। समाज के संपर्क में आने से उसे वास्तविक जीवन का भी ज्ञान होता था। यह विद्यार्थी के लिए स्वावलंबन तथा समाज के प्रति उनके कृ तज्ञता का पदार्थ पाठ था।

### 6.4 शिक्षा के क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

समय–समय पर धर्म के अनुरूप परिवर्तित होना, प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। प्राचीन काल में सभ्यता व संस्कृति को बनाने तथा इस में परिवर्तन लाने में राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक कारकों की अपेक्षा धर्म अधिक प्रभावशाली रहा था। उस समय धर्म ने हिंदुओं के संपूर्ण जीवन शैली के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया। उस समय के प्रमुख विचारको ने सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक जीवन के मूलभूत सिद्धांतों को एक व्यापक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया तथा इसे 'धर्म' की संज्ञा दी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आदर्श, परंपराओं तथा आचारों के संपूर्ण जाल को धर्म के नाम से पुकारा गया। इस प्रकार से धर्म ने हिंदू मानव जाति के राजनीतिक जीवन को आचार संहिता दी तथा उसकी आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया। शिक्षा एक सामाजिक क्रिया है। इसलिए प्राचीन काल में शिक्षा भी धर्म से ही निर्देशित होती थी। धर्म के एक अंग के रूप में 'विद्या' शताब्दियों तक पढ़ाई जाती रही थी। धर्म ने ही शिक्षा की प्रकृति व स्वरूप का निर्धारण किया था। प्राचीन भारतीय शिक्षा भी वास्तव में धर्म की ही देन है। हिंदू धर्म वस्तुतः सनातन काल से चला आ रहा मानव धर्म है जो मानव मात्र के प्रति कल्याण, कामना, सद्भावना तथा सोहार्द्र से परिपूर्ण है। यह प्राचीन मानव सभ्यता व संस्कृति में व्याप्त विचारों की समन्वयात्मक प्रवृत्ति का एक सूचक है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली यद्यपि वैदिक शिक्षा प्रणाली से पूर्णतः प्रेरित दृष्टिगोचर नही प्रतीत होती है; फिर भी वर्तमान शिक्षा को नियोजित करने व इसकी अनेकानेक समस्याओं का समाधान खोजने की प्रत्येक चेष्टा में प्राचीनतमशिक्षा के मूलभूत आधारों पर ध्यान देना सार्थक सिद्ध हो सकता है। वैदिक शिक्षा के आदर्शों अर्थात श्रद्धा, भक्ति, सेवा, आदर, आत्मानुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, नैतिक बल आदि का अनुसरण करके वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था की जा सकती है। पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के अंधानुकरण में हम अपने पुरातन आदर्शों को विस्मृत करते जा रहे हैं। शिक्षा हमारे जीवन से दूर होती जा रही है। छात्र असंतोष, अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, निर्धनता, वर्ग संघर्ष, सामाजिक बुराइयां, राष्ट्रीय विघटन, भाषाई समस्या जैसी अनुत्तरित समस्यायें दिन–प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली के आदर्श तत्वों को वर्तमान शिक्षा में समावेश करके इन समस्याओं का समाधान संभव है। जीवन के वास्तविक मूल्य, गुणों, आदर्शों का अनुसरण करके हमारे छात्र भारतवर्ष की समृद्धि तथा वैभव का पुनरुद्धार कर सकेंगे। जब हमारी शिक्षा में प्राचीन सनातन आदर्शों को सम्मिलित किया जाएगा तब ही हमारी शिक्षा प्रणाली अतीत की भांति विदेशी छात्रों को अपनी तरफ आकर्षित कर सकेगी तथा भारतीय शिक्षा के गौरव को पुनः महिमामंडित कर सकेगी। लक्ष्मण स्वामी मुदालियर ने ठीक ही कहा है कि–"हमारे युवा भारतीयों को उस विरासत को पहचानने दो जो उनकी अपनी है। ईष्वर करे कि युवा पीढ़ी विरासत की वास्तविक आत्मा को पहचानने तथा अपने सभी कार्यों में उसका अनुसरण करें।"

वैदिक शिक्षा से तात्पर्य सिर मुंडाने, लंगोटी बांधने, स्त्रियों से बचने, श्लोकों का रटन्त स्मरण करने, भिक्षा मांगने आदि से नहीं है। उच्च विचारों, स्व अनुशासन, स्नेह व श्रद्धा पर आधारित अध्यापक छात्र संबंध, शहर के कोलाहल से दूर शांत व प्राकृतिक परिसर, छोटी कक्षाएँ, व्यस्त दिनचर्या, अच्छीआदतों का निर्माण, शांति, मानवता, विष्वबंधुत्व के भाव से परिपूर्ण पाठ्यवस्तु, प्रश्नोत्तर व वाद विवाद विधियों का प्रयोग, सादा संयमित व दुर्व्यसनों से रहित जीवन आदि अनेक ऐसी बातें हैं जो आज भी शैक्षिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता के रंग से ओतप्रोत भारतीय जन जीवन में वैदिक शिक्षा के प्रति लगाव विलुप्त हो चुका है, परंतु फिर भी वैदिक शिक्षा के उपरोक्त तत्वों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समाहित करके नष्ट भ्रष्ट होती जा रही भारतीय शिक्षा को नवजीवन दिया जा सकता है।

## 7. निष्कर्ष

RRIJM 2015, All Rights Reserved 

निःसंदेह वैदिक कालीन शिक्षा की अनेक विशेषताएं वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है। वैदिक शिक्षा के उद्देश्य, छात्र अध्यापक संबंध, अनुशासन व्यवस्था, उपनयन संस्कार की अनिवार्यता, समावर्तन उपदेश तथा विनयशीलता, नैतिक चरित्र, कार्य अनुभव व गुरु श्रद्धा को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समाहित करके अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का क्रमिक विकास एक स्वाभाविक ढंग से हुआ था। उसकी जड़े समाज के अंतराल में थी तथा उसका विकास नैसर्गिक था। उसका उद्देश्य था और कुछ संदेश था। भारत के जंगलों और काननों के मध्य में स्थित प्रकृति की रमणीक सोभा से घिरे हुए विद्या केंद्र सभ्यता और संस्कृति के अगाध स्त्रोत थे जहां से मानवता का विकास हुआ। राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धांत क्षेत्र में भारत में चाहिए अधिक उन्नति नही की हो, क्योंकि उसका उद्देश्य सांसारिक पदार्थ संपन्नता की ओर इतना नहीं रहा, किंतु शिक्षा क्षेत्र में भारतीय देन अद्वितीय है। जब संसार की अन्य जातियां सभ्यता की बोली में केवल बड़बड़ाना ही सीख रही थी, भारत ने उच्च तत्वज्ञान की मीमांसा की। उसने अपनी सभ्यता के एक मानदंड की स्थापना की। भारत के प्राचीन शिक्षकों ने शिक्षा के एक विशिष्ट रूप का विकास किया, जिसके द्वारा लौकिक और पारलौकिक अनुभूतियों के समन्वय की स्थापना हुई और इस प्रकार भारतवर्ष माननीय पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ।

## 8. शैक्षिक निहितार्थ

वैदिक युग का प्रारंभ ऋग्वेद से माना जाता है। इस युग में वेदों की रचना हुई। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस काल के ऋषियों ने संपूर्ण ज्ञान, तपस्या और योग बल से प्राप्त किया था। इसके बाद में श्रुतर्षि हुए। इन श्रुतर्षियों को प्रारंभ में तपस्वियों द्वारा प्राप्त ज्ञान उपदेश के माध्यम से दिया गया। प्रारंभ में तपस आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य साधन था। ज्ञान प्रदान करने का मुख्य साधन मंत्रोचार और मंत्र श्रवण था। ऋषि कुल परंपरा या तो वंशानुगत थी अथवा अपने प्रियतम शिष्य को ज्ञान मंत्र कंठस्थ करा दिए जाते थे। यहीं शिष्य भावी ऋषि कुल अधिष्ठाता कहलाता था। लेखन विद्या के अभाव में स्मरण शक्ति के आधार पर ही पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान की शाश्वतता बनी रहती थी। ज्ञान ग्राह्यता विद्यार्थी की योग्यता पर निर्भर थी। इस समय में तीन प्रकार के विद्यार्थियों का उल्लेख मिलता है। विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति और स्मरण शक्ति के अनुसार महाप्रज्ञ, मध्यमप्रज्ञ तथा अल्पप्रज्ञ विद्यार्थी होते थे। वे ऋग्वेद के छंदों को कंठस्थ कर लेते थे और गाते थे। मंत्रों का गायन एक ललित कला के रूप में विकसित हुआ था। शुद्ध उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता था क्योंकि मंत्रों का स्थानांतरण मौखिक होता था। शुद्ध उच्चारण अत्यंत अनिवार्य था अथवा सुद्ध पाठ संभव ही नहीं हो पाता। छंद की रचना पदों के आधार पर और पदों की रचना अक्षरों के आधार पर होती थी। स्पष्ट है कि शिक्षण पद्धति मौखिक थी।

उस समय वैदिक मंत्रों में वैदिक शक्ति की अवधारणा मान्य थी। मंत्रों का सूत्र और संगीतमय उच्चारण आध्यात्मिक शांति प्रदान करने वाला माना जाता था। वेद मंत्रों की व्याख्या और भावार्थ हृदयंगम करना ही महत्वपूर्ण माना जाता था।

वेद कालीन शिक्षा पद्धति में गुरुकुल का अत्यंत ही महत्व था। यूं तो परिवार भी शिक्षा का महत्वपूर्ण स्रोत था; किंतु यह शिक्षा एक आयु विशेष तक की होती थी। छः और अधिक से अधिक आठ वर्ष की आयु पारिवारिक संस्कार प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती थी। तत्पश्चात उपनयन संस्कार की व्यवस्था थी। माता पिता और परिवार का सरंक्षण प्राप्त हो जाता था और बालक गुरु के सरंक्षण में आ जाता था। बालक के भरण पोषण और पालन का संपूर्ण उत्तरदायित्व गुरु का होता था। किंतु गुरुकुल में प्रवेश सरलता से प्राप्त नहीं होता था। यह आवश्यक था कि प्रवेश के लिए बालक योग्यता, नैतिकता सद्ववृत्ति हो अन्यथा उसका प्रवेश निषिद्ध हो जाता था। प्रवेश के पश्चात भी यदि विद्यार्थी में नैतिकता और सदाचार की कमी दिखाई देती थी, तो उसे परिवार में वापस भेज दिया जाता था। ऐसे विद्यार्थी को शिक्षा का पात्र नहीं माना जाता था।

गुरुकुल में निवास करते हुए विद्याध्यन करने वाले विद्यार्थी के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य था। ब्रह्मचर्य पालन का अर्थ सीमित नहीं था। ब्रह्मचारी अविवाहित तो होता ही था; अपितु ब्रह्मचर्य, इंद्रिय निग्रह, सात्विक जीवन तथा स्थितप्रज्ञ होने और ब्रह्म अर्थात ज्ञान की खोज में निरंतर लगे रहने का अभिप्राय था। उस काल में विवाहित व्यक्ति भी विद्यार्थी रहते थे किंतु उनकी शिक्षा गुरुकुल में नहीं होती थी। गुरुकुल में रहकर उनका विद्याध्यन निषेध था।

गुरुकुल वासी ब्रह्मचारी के लिए गुरु सेवा का अत्यधिक महत्व था। गुरु सेवा के आधार पर वह गुरुप्रिय बन सकता था। गुरुकुल का संपूर्ण व्यय भार सेवा के माध्यम से अर्जित किया जाता था। सभी गुरुकुल आत्मनिर्भर थे। यह आत्मनिर्भरता शिष्यों के श्रम से ही प्राप्त होती थी। गुरु भक्ति मन, कर्म और वचन से होती थी। शिष्य गुरुकुल के लिए ही नहीं गुरु गृह और गुरु परिवार के लिए भी श्रमरत रहते थे। ब्रह्मचर्य में रत नहीं रहने वाले या गुरु सेवा से मुंह मोड़ने वाले का गुरुकुल में स्थान नहीं रहता था।

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात भी हो गया था। किंतु वर्ण व्यवस्था पूर्णरूपेण वंशानुगत नहीं थी, केवल जन्म पर निर्भर नहीं थी। यथार्थ में वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित थी। शिक्षा प्राप्त करने में वर्ण कभी भी मार्ग अवरुद्ध नहीं करता था। ज्ञान प्राप्ति किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं थी अपितु वह स्वयं व्यक्ति की शक्तियों और योग्यता पर निर्भर थी। तपस्या और योग साधना किसी भी

RRIJM 2015, All Rights Reserved 

व्यक्ति को वर्ण के बंधन के बिना ही उच्च स्थान पर पहुंचा सकती थी। ऐसे अनेक उदाहरण है, जब क्षत्रिय वंश में जन्मे व्यक्ति ऋषि रूप में प्रसिद्ध हुए। शुद्र भी ऋषि माने गए। यह कहा जाता है कि शुद्र और स्त्री को विद्याध्यन की अनुमति नहीं थी। किंतु यह वैदिक काल के लिए सही नहीं है। उस समय स्त्रियां भी यज्ञ में भाग लेती थी। वेद मंत्रों का पाठ करती थी। उन्हें भी ऋषिका और ब्रह्मवादिनी शब्दों से संबोधित किया जाता था। लोपामुद्रा, घोषा, कामायनी, श्रद्धा, सावित्री, देवयानी इत्यादि अनेक ऋषिकाओं के नाम का वेदों में उल्लेख है। स्पष्ट है कि स्त्रियां अच्छी शिक्षा प्राप्त करती थी। वेदाध्यन उनके लिए निषेध नहीं था। शुद्र कहे जाने वाले भारतीय भी ऋग्वेद काल में शिक्षा के लिए निषिद्ध नहीं थे।

## सन्दर्भ सूची


1. अल्तेकर, डॉ. अनंत सदाशिव. (1979–80). *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धती.* (संशोधित संस्करण). वाराणसीः नंदकिशोर एंड ब्रदर्स.
2. ओमप्रकाश. (1980). *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास.* (द्वितीय संस्करण). नई दिल्लीः मैकमिलन इंडिया लिमिटेड.
3. काणे, डॉ पाण्डुरंग वामन. (1980). *धर्म शास्त्र का इतिहासः प्रथम भाग.* (तृतीय संस्करण).
4. चौबे, सरयू प्रसाद. *भारतीय शिक्षा का इतिहा.* लखनऊः प्रकाशन केंद्र.
5. भार्गव, मनोहर गोपाल. (1972). *मुद्राराक्षस. (प्रथम संस्करण).* इलाहाबादः मधुलिका प्रकाशन.
6. मित्तल, ए. के. (2002) *भारत का सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास.* (तृतीय संशोधित संस्करण). आगराः साहित्य भवन पब्लिकेशन.
7. Chakladar, H. (1990). *Social life in ancient India*. New Delhi: Asian educational services.
8. Dwivedi. B.L. (1994). *Evolution of educational thought in India. New Delhi*: Northern Book Centre.
9. Ghoshal, U. N. (1958). *Studies in Indian History and Culture.*
10. Kale, M. R. *Mudrarakshas*. Bombay.
11. Macdonal, A. (1900). *History of Sanskrit Literature.*
12. Mazumdar, N. (1961). *History of Education in Ancient India*
13. Mookerji. R .K. (2016). *Ancient Indian education (8th Ed.).* Delhi: Motilal Banarsidass.
14. Rapson, E. (1914). Ancient India. London: Cambridge university press.
15. Smith, V. A. *The Early History of India*.
16. Thapar, R. (1990). *A History of India.* Harmondsworth: Penguin.


RRIJM 2015, All Rights Reserved 